जय चक्रवर्ती की गजलें

1.

तीन दिनों की मजदूरी में दो दिन का आटा आए,
बुद्धू दुखिया सोच रहे जीवन कैसे काटा जाए.
क़तरा-क़तरा रोज़ निचोड़े ज़ालिम पहले तो हँसकर,
फिर थोड़ा-सा मरहम देकर घाव हमारे सहलाए.
किस मस्जिद के नीचे क्या है किस मंदिर के पीछे क्या,
ऊपर वाला नीचे वाले को धीरे से समझाए.
इसका उसका चेहरा पहने एक मदारी आता है,
रोज़ी-रोटी के प्रश्नों से ध्यान हमारा भटकाए.
कैसे कोई दुख-सुख बाँटे, कैसे कोई बात करे,
मौसम तानाशाह खड़ा है अपने पंजे फैलाए.

2.

पाँच अंजुरी मुफ्त राशन एक अंधी कोठरी,
एक राशनकार्ड-भर है आदमी की ज़िंदगी.
मज़हबों के नाम पर नफ़रत की फसलें हर तरफ,
राजसत्ता के लिए वरदान है त्रासदी.
सल्तनत ने दी रियाया को मदद कुछ इस तरह,
एक टन अहसान, केवल एक रत्ती सब्सिडी.
छीलना चमड़ी सरापा, बाद में पुचकारना,
है हुकूमत के लिए हिकमत ये कितनी लाजिमी.
उम्र-भर मिल-बाँट कर हमने जिये सुख और दुख,
आपकी इस बादशाहत में हुए हम अजनबी.

3.

तेरी-मेरी इसकी-उसकी सबकी बारी आएगी,
रक्त निचोड़ा जाएगा फिर चमड़ी छीली जाएगी.
दिन होंगे सब दहशत के, रातें होंगी अफवाहों की,
हर दरवाज़े मौत खड़ी होकर साँकल खटकाएगी.
भटकेगा भूगोल स्वयं इतिहास मरोड़ा जाएगा,
भाषा-संस्कृति के माथे बेशर्मी तिलक लगाएगी.
सच्चाई को झूठ पकड़ कर डालेगा कारागृह में,
ज़िंदा शब्दों पर मुर्दा साजिश अभियोग चलाएगी.
धर्म सभाओं के प्रवचन नफ़रत के शोले उगलेंगे,
न्याय-नियम की कुर्सी पर बैठी हर शक्ल डराएगी.

जब जागो तभी सवेरा

राम प्रकाश वर्मा, एडवोकेट

कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया अर्जुन ने सुना, दोनों में से लिखा किसी ने नहीं, किसी तीसरे ने उसको सुना नहीं फिर गीता लिखी किसने? अगर किसी तीसरे व्यक्ति ने गीता सुनी भी तो उसको युद्धक्षेत्र में लिखा कैसे गया? अगर गीता युद्ध के बाद लिखी गयी तो इतने सारे उपदेशो को कंठस्थ किसने किया? इतने सारे उपदेशों को सुनकर याद रखकर बिलकुल वैसा ही कैसे लिखा जा सकता था? अगर गीता के उपदेश इतने ही गोपनीय थे कि उनको सिर्फ अर्जुन ही सुन सके तो इन दोनों के बीच का वार्तालाप सार्वजानिक कैसे हुआ? अगर गीता के उपदेश सभी लोगो के लिए उपयोगी थे तो कृष्ण को चाहिए था वो अपने उपदेश युद्ध में हिस्सा लेने वाले सभी लोगो को सुनाता ताकि सभी लोगो का हृदय परिवर्तन हो सकता और इतने बड़े नरसंहार को टाला जा सकता। अगर गीता के उपदेश उस समय सभी के लिए उपयोगी नहीं थे तो आज सभी के लिए उपयोगी कैसे हो सकते हैं?

गीता में लिखा गया है: आत्मा न पानी में डूब सकती है न हवा से उड़ सकती है और ना ही अग्नि में जल सकती है, मतलब आत्मा पर किसी चीज़ का प्रभाव नहीं होता। आत्मा अमर है, जिस तरह इंसान कपड़े बदलता है उसी तरह आत्मा शरीर बदलती है। लेकिन जब किसी पापी को नरक में सज़ा के तौर पर यातनाएं दी जाती हैं वह कैसे दी जाती हैं? किसे दी जाती हैं? क्योंकि शरीर तो पृथ्वी पर जला दिया जाता है और आत्मा पर किसी चीज़ का असर होता नहीं तो फिर लोगों को स्वर्ग का लालच और नर्क का भय क्यों दिखाया जाता है? मूर्ख बनाना भी धर्म नहीं यह धंधा है, इसमें पढ़ा लिखा भी अंधा है। दिमाग की बत्ती जलाओ अंधविश्वास दूर भगाओ। बेवकूफ बनाने वालों का नाश हो बुद्धि का विकास हो।

"शून्य का आविष्कार पांचवी सदी मेँ आर्यभट्ट ने किया" ये झूठी बात है? त्रेता मेँ रावण के 10 सिर बिना शून्य के कैसे गिन लिये थे.. ??..कह दो कि आर्य भट्ट ने शून्य का आविष्कार नहीँ किया था.. नहीँ तो हजारोँ वर्ष पुरानी रामायण महाभारत झूठी साबित हो जायेगी.! महाभारत भी पांचवी सदी में लिखी मानी जायेगी क्योंकि कौरव भी 100 भाई थे और 100 में तो दो शून्य आते है जिनका आविष्कार पांचवीं सदी में महान गणितज्ञ आर्यभट्ट जी ने किया..!! दो झूठ एक साथ कैसे चल सकते हैं? कड़वी सच्चाई यही है कि रामायण महाभारत पांचवी सदी के बाद ही लिखी गयी थी और तब तक आर्यभट्ट जी द्वारा शून्य का अविष्कार हो चुका था..! अब नहीं चलेगा पाखंड क्योँकि अब हम शिक्षित हैं, झूठ पकड़ लेते हैं, लगा ना जोर का झटका धीरे से !!! झूठी कहानी का पर्दाफाश होगा। आज नही तो कल निश्चित होगा। जब शेर जागेगा तो लुटेरा गीदड़ दुम दबाकर भागेगा। सबेरा और उजाला तब नहीं होता, जब सूर्योदय होता है, उसके लिए आंखें भी खोलनी पडती हैं।

गंगा की गंदगी / अशोक वर्मा

निरंतर बहते रहना नदी का स्वाभाविक धर्म है। नदी चाहे मेरे आसपास की हो, या आपके आसपास की, या किसी अन्य के पास की, उसका पानी निरंतर प्रवहमान् रहता है। यह निरंतरता नदी का स्थायी गुण और प्रवाहित होते रहना उसकी सहज प्रवृति है! यदि नदी का पानी स्थिर होता, तो वह झील, या तालाब होती! नदियों ने मानव-सभ्यता के विकास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाया है। उनके क्रोड़ में ही विश्व की कई संस्कृतियाँ विकसित, पल्लवित और पुष्पित हुईं। इसीलिए उनके आसपास रहनेवाले उनको अपने लिए प्रकृति का वरदान मानते हैं। मिस्र के निवासी नील को, इराक वाले दजला-फरात को, सिंध और पंजाब के लोग सिंधु और उसकी सहायक नदियों को, उत्तर भारत के लोग गंगा-यमुना को अपने लिए वरदान मानते हैं।

हमारे देश में कमोबेश दो सौ नदियाँ हैं, जिनमें से पाँच- गंगा, यमुना, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र और कावेरी पवित्र मानी जाने के कारण पूजी जाती हैं। गंगा को माँ कहकर पुकारा जाता है। वह साक्षात् देवी मानी जाती है, और जो उसमें स्नान करनेवालों को उनके समस्त पापों से मुक्तकर स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करती है। इसीलिए उसे केवल गंगा न कहकर सम्मान से गंगाजी कहकर पुकारा जाता है। मान्यता है कि वह दुनिया की अन्य नदियों की तरह जन्म नहीं लेती, बल्कि स्वर्ग से उतरती है। उसको दैवीय बताने के लिए हमने मिथक गढ़ा है। यह और बात है कि उमंगोत नदी को मेघालय के लोग न पवित्र मानते और न ही पूजते हैं, जबकि उसकी शुद्धता का प्रतिमान यह है कि उसके पानी में तैरती हुई नावें काँच पर तैरती हुई-सी प्रतीत होती हैं। यूके की नदी थेम्स को वहाँ के लोग न पवित्र मानते हैं और न पूजते हैं। लेकिन उसकी साफ़-सफ़ाई अद्भुत है। गंगासफ़ाई का अभियान दशकों से चल रहा है, परंतु विश्व की सबसे अधिक गंदी पाँच नदियों में एक हमारी गंगा है। स्पष्ट है साफ़-सफ़ाई और रख-रखाव के लिए पवित्र, पूजनीय या देवी मानना आवश्यक नहीं है। उसके लिए प्यार और सम्मान ही पर्याप्त है; यह अहसास ही पर्याप्त है कि 'हमारा अस्तित्व उसके अस्तित्व पर निर्भर है, वह हमारी जीवनधारा है, उसका साफ़-सुथरा होना हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।'

गंगा की गंदगी वास्तव में हमारे दिमाग की गंदगी का प्रतिबिंब है, हमारे वैचारिक खोखलेपन का सबूत है, हमारे पाखंडी चरित्र की अभिव्यक्ति है, हमारी कथनी-करनी के भेद का प्रमाणपत्र है। हमने गंगा को भौतिक रूप से ही गंदा नहीं किया, सांस्कृतिक रूप से भी गंदा किया है। हमारा चरित्र जैसा है, वह आज वैसा नहीं हुआ है, वह सहस्राब्दियों से ऐसा ही रहा है। शिव की जटाओं से निकला पानी उन्हीं पर दोबारा न जाने कब से चढ़ाते चले आ रहे हैं। हमारे घर, कार्यस्थल और बाहर हर जगह भगवान् या उसके प्रतीक रहते हैं, दिन की शुरुआत भी हम उसके स्मरण से करते हैं, लेकिन कार्य और आचरण में हमें ईमानदारी मुश्किल से छू पाती है। बड़बोलापन, डींगें हाँकना और ढकोसलेबाजी हमारी फ़ितरत में है। हम कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। हमारे यहाँ आदर्श और यथार्थ के अंतराल को पाटना आवश्यक नहीं माना गया। आदर्श और यथार्थ में समन्वय हमारे चरित्र का मापदंड नहीं रहा। हमारे पाखंड का एक और मज़ेदार नमूना देखिए। सुदामा की ग़रीबी हमारे साहित्य का ही प्रिय विषय नहीं है, उसके त्राण के लिए भगवान् स्वयं भी व्यग्र नज़र आते हैं। जूते खरीदने की सामर्थ्य का अभाव तक हमारे साहित्य को दिखायी पड़ता है। लेकिन लछमिनिया, चैतू, लकड़हारे और बहेलिए केवल होते हैं। उनके दुःख-दर्द, ग़रीबी और दैन्य तक आते-आते हमारी संवेदना की उफनती नदी रीतकर सूख जाती है। उनके लिए हमारे पास संवेदना के दो शब्द तो हैं ही नहीं, संवेदना के प्रदर्शन का पाखंड भी अशेष हो जाता है। जबकि संवेदनाप्रदर्शन की शब्दावली का प्रभूत भंडार हमारे पास है और इसमें हमारी प्रवीणता का जवाब नहीं है। सहस्राब्दियों से अभिशप्त चैतू, आदि का जीवन साहित्य की संवेदना को स्पंदित करने में सदा असक्षम ही रहा है। सही अर्थों में उनके जीवन के दैन्य से हमारा किसी प्रकार का सरोकार ही नहीं रहा। यह हमारी निष्ठुरता और बेइमानी की पराकाष्ठा है। इसीलिए प्रभुवर्ग से सहानुभूति के दो शब्द सुनकर चैतू का वर्ग धन्य हो जाता है, इसे भी वह अपने ऊपर प्रभुवर्ग की %कृपा% मानता है, क्योंकि उसको मौलिक अधिकार, आदि कुछ पता ही नहीं हैं।

सच्चे, स्पष्टवादी और सरल भाषा में बात करनेवाले लोग हमें पसंद नहीं आते। हमें गूढ़, दुरूह, अस्पष्ट, मायावी, रहस्यमयी और चामत्कारिक बातें करनेवाले बहुत पसंद आते हैं। हमारे समाज का बहुसंख्यक तो सोच-विचार करने के अधिकार से ही वंचित रहा है। चालाक लोगों के तथाकथित पावन ग्रंथों द्वारा विहित अनैतिक और अन्यायपूर्ण विधानों को उसने कर्मवाद, भाग्यवाद और नियतिवाद के प्रभाव में बिना प्रतिकार, या विरोध के जैसा का तैसा स्वीकार कर लिया। इन विधानों का उस पर इतना प्रभाव रहा कि वह यह भी तय करने में सक्षम नहीं रहा कि क्या अन्यायपूर्ण, अनैतिक और ग़लत है, क्या नहीं। सत्य और मिथ्या में भेद करनेवाले विवेक का उनमें विकास ही नहीं हो सका। अपनी हानि-लाभ का आकलन करने में वह सक्षम नहीं बन सका। उसमें अपना शुभचिंतक पहचानने की क्षमता नहीं रही। नासमझी के कारण धीरे-धीरे अपना दुश्मन वह स्वयं बन गया है। तभी चार्वाक, आजीवक, गौतम बुद्ध, महावीर, नागसेन, अश्वघोष, कबीर, नानक, रविदास, ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू, रामास्वामी पेरियार, भीमराव आंबेडकर, भगतसिंह, राहुल संस्कृत्यायन, आदि के विचार उसको पसंद नहीं आते हैं।

यह हमारे पाखंडी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है कि भगत सिंह निर्विवाद रूप से आज पूरे देश के हीरो हैं, मगर उनके विचारों से किसी को कुछ लेना-देना नहीं है! उनका 'मैं नास्तिक क्यों' लेख शायद ही किसी ने पढ़ा और समझा हो। जब हम उनके विचार मानते नहीं, तब उनके प्रति हमारा प्यार और सम्मान ढकोसले से अधिक क्या है? देश से बाहर गौतम बुद्ध का नाम लिए बिना हमारे लिए प्रभावशाली ढंग से अपना परिचय देना मुश्किल हो जाता है, मगर उनके विचारों से हमें कोई विशेष अनुराग नहीं है। विज्ञान और उसके उत्पादों के बिना हमारा जीवन असंभव है, मगर उसका अविवेकपूर्ण विरोध करना हमारी आदत है। यह आदत बहुत पुरानी है, जब लोहा खोजा गया था, तब भी विरोध हुआ था। इसीलिए वैज्ञानिक दृष्टि के विकास का हमारे यहाँ कोई प्रभावी और सार्थक प्रयास नहीं किया जा रहा। इसके विपरीत आमजन की विवेकीय अक्षमता को बनाए रखने का प्रभावी प्रयास होता रहता है। प्रचारतंत्र के लगभग सारे माध्यम इसी महान् और उदात्त कार्य में अहर्निश लगे हुए हैं। मिथकीय देवी-देवताओं से संबंधित कार्यक्रम दिनभर दिखाए जाते हैं। सांवैधानिक मूल्यों के विपरीत शास्त्रों की प्राचीन शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया जाता रहता है। स्वतंत्रता के पचहत्तर साल बाद की यह स्थिति चिंताजनक है। तात्पर्य यह कि हम अपनी आदतों से आज तक बाज नहीं आए।

हमारा इतिहास गवाह है कि सभी बाहरी आक्रांताओं से हम पराजित हुए। जो कमज़ोरियाँ इन पराजयों का कारण हैं, उनको हम जानते-समझते हैं। इनमें सबसे बड़ा कारण अनीति और अन्याय पर आधारित हमारी सामाजिक व्यवस्था, यानी जातिप्रथा है। मगर प्रभुवर्ग इन कमियों को अपने झूठे दंभ, अहम और स्वार्थ के कारण धर्म और संस्कृति की दुहाई देकर संरक्षित करने का प्रयास करता रहता है। अपने विशेषाधिकारों पर किसी तरह की कटौती वह बिलकुल नहीं करना चाहता, भले इसके लिए समाज और देश को चाहे कोई क़ीमत अदा करना पड़े। आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारे समाज और देश को कमज़ोर करनेवाले लोग ही देशभक्त हैं, देश की कमज़ोरियों को दूरकर उसको शक्तिशाली बनाने की चाहत रखनेवाले नहीं।

हमने विश्व इतिहास में जापान-जैसे स्वाभिमानी और उन्नत देश के इतिहास से भी शिक्षा नहीं ली। उन्नीसवीं सदी के मध्य में जापान के आसपास जैसे ही पश्चिमी शक्तियों की गतिविधियाँ बढ़ीं, वैसे ही उसने पश्चिम के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए अपने अतीत को भुलाकर अपने को आधुनिक और अद्यतन कर लिया। परिणाम हुआ कि रूस-जैसे विशाल देश को इस छोटे-से देश ने सन् 1905 ई. के युद्ध में हरा दिया। एशिया के देशों के लिए यह घटना उत्साहवर्धक और प्रेरणादाई सिद्ध हुई, क्योंकि ऐसा पहली बार हुआ कि जब कोई पूर्वी देश किसी पश्चिमी देश से युद्ध में जीता हो। जापान की इस जीत ने पश्चिमी देशों की अजेयता के तिलिस्म को चकनाचूर कर दिया। उसके बाद दुनिया के गुलाम देशों के निवासी अपने देश की आज़ादी के सपने देखने लगे।

इस क्रम में विचारणीय बात यह है कि हमारा चरित्र समझना असंभव भले न हो, मगर आसान बिलकुल नहीं है। न जाने कब से हम %वसुधैव कुटुम्बकम्% और %आत्मवत् सर्व भूतेषु% के गीत गा रहे हैं, मगर सम्पूर्ण वसुधा या सभी प्राणियों की क्या बात करें, हमें अपने देश का वह वर्ग और उसका दर्द कभी दिखायी नहीं दिया, जिसके लिए साबुत बर्तन में खाना खाने का अधिकार नहीं है, जिसको अच्छे और नए कपड़े पहनने का अधिकार नहीं है, जिसको अच्छे घर में रहने का अधिकार नहीं है, जिसको केवल जूठन खाने का अधिकार है, जिसको धन-संपत्ति रखने का अधिकार नहीं है, जिसको पढ़ने-लिखने का अधिकार नहीं है, जिसको छूने से प्रभुवर्ग अपवित्र हो जाता है, जिसका जीवन अपमान और अभिशाप का पर्याय है। दुःखद है कि आज भी यह स्थिति क़ायम है। कहीं कोई किसी पर पेशाब कर रहा है, कहीं कोई किसी को जूते में भरकर पानी पिला रहा है, कहीं कोई किसी को तलुवे चाटने के लिए विवश कर रहा है। मानवीय दृष्टि से अकल्पनीय ऐसे अपराधों के समाचार हमारे देश के किसी न किसी कोने में अख़बारों की सुर्खियाँ बनते रहते हैं।

पाखंड और आडंबर से मुक्त हुए, यानी दृष्टिकोण बदले बिना न हमारी गंगा साफ़ होगी और न हमारा समाज; न हमारी समाज से अंधविश्वास मिटेंगे, और न ही नियतिवाद और भाग्यवाद से हमारा समाज मुक्त होगा; न समाज में ईमानदार, न्यायप्रिय और सज्जन लोगों की संख्या बढ़ेगी, और न हमारे सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी सकारात्मक परिवर्तन ही होंगे। जब तक हमारा समाज नियतिवाद और भाग्यवाद से ग्रस्त हैं, तब तक समाज की संतुलित और सच्ची उन्नति संभव नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि के विकास के बिना अंधविश्वास से मुक्ति असंभव है। वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हमारा कर्त्तव्य है। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि के विकास के स्थान पर हम अंधविश्वास को महिमामण्डित करने में लगे हुए हैं।